संपादकीय

मौजूदा वक्त में सरकारी और निजी स्कूलों में सभी बच्चों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एक मुख्य सरोकार है। पिछले कुछ सालों में यह विषय चर्चा के केन्द्र में रहा है। इसके बावजूद जमीनी स्तर पर बदलाव होते हुए दिखाई नहीं दे रहे हैं। पिछले दिनों बांग्लादेश से आए एक समूह के साथ मुझे कुछ सरकारी स्कूलों में जाने का मौका मिला। यह एक विचित्र संयोग था कि एक तरफ स्कूल में कई स्कूलों से आए शिक्षकों का एडुसेट के जरिए सतत एवं व्यापक मूल्यांकन पर सीधे प्रसारण के माध्यम से प्रशिक्षण चल रहा था और दूसरी तरफ कक्षा 6 से 9 के अधिकांश बच्चे कुंजियों/पासबुक के जरिए सवाल-जवाबों की नकल करने में व्यस्त थे। इन बच्चों के पास अपनी पाठ्यपुस्तकों के कुल जमा पन्नों जितनी एक ही कुंजी/पासबुक थी। कक्षा 6 के बच्चों के पास करीब 300 पृष्ठों और कक्षा 9 के बच्चों के पास 800 पृष्ठ वाली सभी विषयों की समेकित कुंजी थी। मैंने जानना चाहा कि वे इनका उपयोग क्यों करते हैं। मैंने पूछा, ''आप लोगों के पास तो किताबें भी हैं, जितने पन्ने आपकी सब किताबों को मिलाकर बनते हैं लगभग उतने ही इस कुंजी/पासबुक में हैं। फिर आप लोग किताबें ही क्यों नहीं पढ़ते हैं? क्या इन कुंजियों में किताबों से कुछ अलग है?'' बच्चों का जवाब था, ''इनमें सभी सवालों के जवाब एक साथ मिल जाते हैं।''

यह अनुभव इशारा करता है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था काफी खोखली हो चुकी है और स्कूलों में प्रशिक्षण के चाहे जितने भी तामझाम किए जा रहे हों, वहां उपयुक्त तरीके से शिक्षण कार्य नहीं हो रहा है। यह अनुभव यह भी संकेत करता है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था सीखने की रूढ़ धारणा से मुक्त नहीं हो पाई है। यहां सीखने का मतलब अभी भी प्रश्नों के जवाब दे देना भर ही माना जा रहा है। शिक्षकों और बच्चों के दिमाग में यह बहुत गहराई से बैठा हुआ है कि 'सफलता' के मायने परीक्षाओं में अंक ले आना भर है और वह सिर्फ रटकर ही संभव है। एक संकेत यह भी है कि हमारे यहां अध्यापक शिक्षा बेअसर हो चुकी है। फिर चाहे यह सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा हो या सेवाकालीन। दो साल के *डिप्लोमा इन एज्युकेशन* कोर्स में और *बीएड* के एक साल के कोर्स में शिक्षकों की अपेक्षित तैयारी नहीं हो पा रही है। शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के नाम पर सरकारों ने शिक्षक बनने की अर्हता में सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण को अनिवार्य बनाया है और सेवाकालीन प्रशिक्षण के भी प्रावधान किए हैं, फिर भी स्कूलों में सीखने का सूरतेहाल ऐसा क्यों है?

किसी भी सूरत में कक्षाओं में गुणवत्तापूर्ण सीखने का लक्ष्य अध्यापक शिक्षा की अनदेखी करके हासिल नहीं किया जा सकता। शिक्षाविदों और शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत संगठनों का ध्यान पिछले दो दशकों में इस तरफ दिलाया है। इसके बावजूद सरकारों ने इसे पूरी गंभीरता से नहीं लिया है बल्कि कहना चाहिए कि शिक्षा के बाजार में अध्यापकों की पूर्ति और 'बेहतरी' के नाम पर केन्द्र और राज्य सरकारों ने अध्यापक शिक्षा को लगभग पूरी तरह निजी संस्थाओं के हवाले कर दिया है। मार्च 2013 के आंकड़ों (टीचर एज्युकेशन, डिपार्टमेंट ऑफ स्कूल एज्युकेशन एण्ड लिटरेसी, मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के हिसाब से पूरे देश में *डिप्लोमा इन एज्युकेशन* और *बीएड* जैसे अध्यापक शिक्षा कोर्स के करीब 93 प्रतिशत संस्थान निजी क्षेत्र द्वारा संचालित किए जा रहे हैं जबकि सिर्फ 7 प्रतिशत सरकारी हैं। इनमें अध्ययनरत शिक्षार्थियों का प्रतिशत भी कमोबेश यही है। सवाल यह है कि अध्यापक शिक्षा संस्थानों की इस स्थिति का सभी बच्चों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से क्या संबंध है?

राज्य एवं केन्द्र सरकारें आमतौर पर यह प्रतिबद्धता जाहिर करती हैं कि उनका मकसद सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया कराना है लेकिन अपने इस आदर्श को अर्जित करने के लिए उन्होंने अध्यापक शिक्षा

को कभी भी गंभीरता से नहीं लिया है। बगैर सामान्यीकरण के यह कहा जा सकता है कि अध्यापक शिक्षा के लिए संचालित अधिकांश निजी संस्थान इसे मुनाफे का जरिया ही मानते हैं। यदि मुनाफे को जायज मान भी लिया जाए तो भी इन संस्थानों में सीखने-सिखाने की स्थितियां निराशाजनक हैं। पिछले साल मुझे कुछ निजी बीएड कॉलेजों को देखने-समझने का अवसर मिला। इन कॉलेजों में कार्यरत शिक्षक कागजी तौर पर सभी अर्हताएं पूरी करते हैं, लेकिन सीखने-सिखाने के पाठ्यक्रम और तौर-तरीके पुराने ही हैं। आज भी कक्षाओं में व्याख्यान पद्धति से ही शिक्षण होता है। बुनियादी सुविधाओं में बेहतर होने के बावजूद इन कॉलेजों में नियमित कक्षाएं नहीं लगतीं। एक निजी बीएड कॉलेज में कुछ शिक्षार्थियों के साथ हुई बातचीत से जाहिर हुआ कि कुछ विशेष आयोजनों पर उन्हें इकट्ठा करने के लिए कॉलेज की तरफ से फोन किया जाता है। उनमें उपस्थित होना अनिवार्य है। इसके अलावा यदि वे नहीं आते हैं तो काम चल जाता है, कॉलेज आने की बाध्यता नहीं है। यह पूछने पर कि फिर परीक्षा के लिए उपस्थिति का अनिवार्य प्रतिशत और पास होने के लिए पढ़ाई का क्या होता है? उन्होंने कहा कि यह सब तो मैनेज हो जाता है। कॉलेज के एक प्राध्यापक ने निजी बातचीत में बताया कि उपस्थिति और परीक्षा सब मैनेज हो जाती हैं। कॉलेज को सिर्फ फीस से लेना-देना है। यदि वह मिल गई तो फिर बाकी सब काम हो जाते हैं।

अध्यापक शिक्षा की स्थिति सिर्फ निजी कॉलेजों की ही खराब नहीं है बल्कि सरकारी संस्थानों की स्थिति भी लगभग इनके समान ही है। *डिप्लोमा इन एज्युकेशन* के एक सरकारी संस्थान के अवलोकन से भी कमोबेश यही स्थिति उजागर होती है। पिछले दिनों मुझे *डिप्लोमा इन एज्युकेशन* के एक सरकारी संस्थान के शिक्षार्थियों के साथ अन्तःक्रिया करने का अवसर प्राप्त हुआ। संस्थान के साथ यह अन्तःक्रिया एक कार्यक्रम के तहत नियमित तौर पर की जाती है लेकिन मेरे लिए यह पहला अवसर था। हमारी यह अन्तःक्रिया प्रथम वर्ष के शिक्षार्थियों के साथ पहले से तय थी। संस्था प्रधान ने स्वयं और बाकी स्टाफ की काम से मुक्ति के लिए मौके का फायदा उठाते हुए प्रथम और द्वितीय वर्ष के सभी शिक्षार्थियों को एक साथ बैठा दिया। एक बड़े कमरे में करीब 55-60 शिक्षार्थी फर्श पर बिछी दरी पर पंक्तिबद्ध बैठ गए। इसके बाद नियमित तौर पर होने वाली प्रार्थना को पूरे रीति-रिवाज से करवाने के बाद शिक्षार्थियों को हमारे हवाले करके चले गए। शिक्षार्थियों के साथ अध्यापकों द्वारा किए गए बर्ताव में सत्ता का भरपूर उपयोग किया गया। समय पर आने की नसीहतें दी गईं जबकि स्वयं शिक्षक भी समय पर संस्थान में मौजूद नहीं थे।

शिक्षार्थियों के साथ अन्तःक्रिया से पता चला कि अधिकांश शिक्षार्थी ग्रामीण पृष्ठभूमि से थे। 12वीं कक्षा की पढ़ाई पूरी करने के बाद यह एक आसान विकल्प था और यह डिप्लोमा एक संभावित सुरक्षा उन्हें प्रदान करता है कि कम से कम शिक्षक तो बन ही जाएंगे। इसके अलावा सीखने-सिखाने के प्रति वे उदासीन ही थे। उन्हें चर्चा में शामिल करने की तमाम कोशिशें व्यर्थ ही गईं क्योंकि वे उच्च माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा में व्याख्यान पद्धति के अभ्यस्त हो चुके थे। लेख पढ़ने और उस पर चर्चा करने में उनकी सहभागिता नहीं के बराबर ही थी। इस अनुभव से पता चलता है कि हमारी उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा पढ़ने, समझने और चर्चा करने के कौशलों से सरोकार नहीं रखती। एक अन्य समस्या जो इन अनुभवों से समझ में आई वह यह कि इन कोर्सेज के लिए आने वाले शिक्षार्थियों की जो भी समझ हो या विश्व बोध हो, अध्यापक शिक्षा कोर्स उस यथार्थ के साथ बिना टकराए पाठ्यक्रम में दिए गए कोर्स को पूरा कराने का काम करते हैं। जब तक प्रशिक्षुओं अध्यापकों के विश्व बोध में बदलाव के लिए कोशिश नहीं की जाएगी और उनके साथ संस्था में उनके आत्मसम्मान और गरिमा के साथ व्यवहार नहीं किया जाएगा तब तक, उनके नजरिए में बदलाव नहीं लाया जा सकता। साथ ही उन्हें स्वयं सोचने, समझने के अवसर भी देने होंगे। उनके सामाजीकरण की एक पुख्ता जकड़ से मुक्त कराने की जद्दोजहद जब तक इन कोर्स में नहीं की जाएगी तब तक बेहतर शिक्षक तैयार करना एक सपने जैसा ही रहेगा।

इसके लिए अध्यापक शिक्षा में निवेश बढ़ाने की जरूरत है। दीर्घकालीन सोच के साथ यह निवेश सरकार ही कर सकती हैं। साथ ही ढांचागत बदलाव करना भी जरूरी है। निजी संस्थाओं के हाथों में इसे सौंपकर बेहतर अध्यापक तैयार नहीं किए जा सकते। ◆